कुन्दकुन्द-नाम व समय

जैन धर्म के शीर्षस्थ आचार्यों मे कुन्दकुन्द का स्थान वहुत ऊँचा है। जैन धर्म की सभी शाखाओ मे उनके ग्रन्थ समयसार का समान आदर और ग्रहण है। फिर भी इनके समय के वारे मे भारी अनिश्चितता है। जानकार विद्वानो के विमर्श के अनुसार यह समय ईसा पूर्व पहली शती से लेकर ईसा की छठी शती तक मे कही भी हो सकता है। एक छोर पर स्व० जुगलकिशोर मुख्तार, ए०एन० उपाध्ये, चक्रवर्ती आदि विद्वान हैं, तो दूसरी ओर मुनि कल्याण विजय व डा० बी० के० पाठक। समयसार पर जयचन्द जी की वचनिका से पाया जाता है कि गुणधर के कषाय प्राभृत पर यतिवृषभ (५४०–६०९) आदि ने चूर्णिकाएँ लिखी, इन आचार्यो की परम्परा मे कुन्दकुन्द ने ज्ञान प्रधान अर्थात् शुद्ध द्रव्यार्थिक नय—निश्चयनय—का ग्रथ समयसार लिखा। इसका अर्थ यह कि कुन्दकुन्द सातवी सदी के उत्तरार्द्ध के आसपास हुए।

आइए, पहले देखे उनके द्वारा रचित कहे जाने वाले ग्रन्थो मे जो कुछ सकेत उनके जीवन व नाम के बारे मे मिलते है। वारस अणुवेक्खा मे लिखा है—

> **इदि णिच्छय ववहारं ज भणिय कुन्दकुन्द मुणिणाहे।**
> **जो भावई सुद्धमणो सो पावई परम णिव्वाण॥**

मगर श्रवण बेलगोला के सस्कृत शिलालेखो मे जो अधिकतर १२वी सदी के हैं उनका नाम कौण्डकुन्द मिलता है। प्रगट है कि उनके असली नाम का सपूर्ण सस्कृतीकरण उनके रहते नही हुआ था। अत यदि उक्त गाथा उनकी रचना होती, तो इसमे कुन्दकुन्द नाम नही मिलता और न स्वय कुन्दकुन्द अपने को "मुनिनाथ" कहते। प्रत्युत— इस शब्द का प्रयोग इस वात का सकेत है कि यह गाथा उनके द्वारा रचित नही है। इसके अलावा इस ग्रथ की जो विभिन्न हस्तलिपियाँ हैं, उनमे कई मे यह गाथा है ही नही। इसलिए यह कहना भी ठीक नही कि इस ग्रन्थ के रचनाकार आचार्य कुन्दकुन्द हैं। केवल इस आधार पर कि इसकी कुछ गाथाएँ मूलाचार मे मिलती हैं (जिसके

बारे मे यह भी कहा जाता है कि वह वट्टकेर की कृति है) यह अनुमान लगाना उचित नही कि बारस अणुवेक्खा मूलाचार की समकालवर्ती या एक ही रचनाकार की कृतिया है।

दूसरी सूचना बोध पाहुड (गाथा ६०-६१) मे है जो इस प्रकार है—

सद्द वियारो हूओ भासासुत्तेसु जं जिणे कहियं।
सो तह कहियं णायं सीसेण य भद्दबाहुस्स।
बारस अंगवियाणं चउदस पुव्वंगविउलवित्थरण।
सुयणाणि भद्दबाहू गमय गुरू भयवाओ जयओ॥

इसमे उन्होने अपने को भद्रवाहु का शिष्य होना बताया है। जुगलकिशोर जी इसे भद्रबाहु द्वितीय का शिष्य होना निर्धारित करते है, परन्तु गाथाओ से तो लगता है कि वे भद्रबाहु प्रथम के ही शिष्य थे। ए० एन० उपाध्ये ने इसलिए अर्थ लगाया कि वे भद्रबाहु की परम्पराओ मे के शिष्य थे। यदि वे भद्रबाहु के शिष्य थे तो उनका समय ईसा पूर्व की तीसरी शती के लगभग होगा जो किसी पक्ष को मान्य नही है। (इसके अलावा यह भी विवादास्पद है कि ये अष्टपाहुड आचार्य कुन्दकुन्द की कृतिया है भी या नही। मेरे विचार से यह पाहुड तो कतई नही क्योकि इसमे व्यवस्था की गई है कि मुनि को श्मशान मे रहना चाहिए जो किसी शैव तात्रिक का कथन जैसा जान पडता है।)

उनके सर्वप्रथम टीकाकार आचार्य अमृतचन्द्र सूरि का समय १००० ए डी का माना जाता है जो नेमिचन्द्राचार्य का भी समय है, पर आश्चर्य यह है कि अमृतचन्द्र ने तीनों प्राभृतो की टीका मे कही भी कुन्दकुन्द का व नेमिचन्द्र का नाम नही लिया। उनके केवल 'शास्त्रकार' इस शब्द का प्रयोग किया है। इसके अतिरिक्त तीनो प्राभृत नाटकत्रयी भी कहे जाते है जबकि केवल समयसार को ही नाटक इसलिए कहा कि ससार एक नाटक है और जीव और अजीव उस नाटक के पात्र। (इसका अर्थ यह कि ११वी शताब्दि तक कुन्दकुन्द इन ग्रन्थो के रचनाकार नही जाने जाते थे और एम शूलर (M Schoyler) की Bibliography of the Sanskrit Drama p 24 मे अमृतचन्द्र का नाम नाटककार की हैसियत मे लिखा है और समय

सार नाटक ग्रन्थ उनके नाम के साथ लिखा है। आश्चर्य क्या कि समयसार ग्रन्थ उनके द्वारा ही रचित हो। उनकी टीका 'आत्मख्याति' भी इसी वात की सूचक है। यह टीका आत्मा का आख्यान ही नही उनकी अपनी ख्याति का भी कारण है। तो फिर हम यह सही तौर पर कह सकते हैं कि प्राभृतो के रचनाकार के रूप मे कौण्डकुन्द या कुन्दकुन्द का नाम १००० ए. डी तक प्रचलित नही था। निष्कर्ष यह कि वारस अनुवेक्खा मे दिया गया कुन्दकुन्द यह नाम १२वी शताब्दी के पूर्व का नही है। वास्तविकता तो यह है कि ये दोनो ग्रन्थ कुन्दकुन्द की रचनाएँ नही है न इनसे उनके समय निर्धारण मे कोई सहायता ही मिल सकती है।

इस विषय मे प्रामाणिक सामग्री श्रवण वेलगोला के शिला लेखो मे ही मिल सकती है। तो, आइए इन शिला लेखो पर दृष्टि-पात कर ले।

सबसे पहला शिलालेख चन्द्रगिरि के कन्तिले वसदि के द्वार से दक्षिण की ओर स० ५५(६९) है जो सन् ११०० ए.डी का अनुमानित है। इसमे लिखा है—श्रीमतो वर्द्धमानस्य वर्द्धमानस्य शासने।

श्री कोण्डकुन्द नामाभून्मूल सघाग्रणी गणी।

इसमे कोण्डकुन्द के नाम का स्मरण मूलसघ के सस्थापक आचार्य के रूप मे किया गया है। ऐसा ही विध्यगिरि के शिलालेखन न० ९०(२४०) ए.डी ११७८ मे वर्णग है।

वेलगोला नगर मठ के उत्तर की गौशाला मे लेख न० १३६ (३५१) सन् १११९ का है जिसमे लिखा है—

स्वस्ति श्री वर्द्धमानस्य वर्धमानस्य शासने
श्री कोण्डकुन्द नामा भूच्चतुरङ्गुल चारणः।

जान पडता है वीच के दो दशक (११००-१११९) मे उनकी प्रसिद्धि पृथ्वी तल से चार अगुल ऊपर चलने वाले चारण मुनि के रूप मे होने लगी थी और उनका असली नाम पद्मनन्दि है यह भी वताया जाने लगा था। इसलिए इसके वाद चन्द्रगिरि के शिलालेख न० ४३ (११७) सन् ११२३ तथा न० ५० (१४०) सन् ११४६ न० ४७ (१२७) सन् ११५५ व न० ४२ (६६) सन् ११७७ मे लिखा गया—

श्रीपद्मनन्दीत्यनवद्यनामा आचार्य शब्दोत्तर कौण्डकुन्द.।

द्वितीयमासीदभिधान मुद्यच्चारित्र सम्जात सुचारणर्द्धिः ।।

[इन शिलालेखो मे उत्कीर्ण हुआ कि उनका असली नाम पद्मनंदी था, आचार्य कोण्डकुन्द दूसरा नाम था और यह भी कि उन्हे अपनी तपस्या के वल से चारण ऋद्धि प्राप्त हो गई थी]

चन्द्रगिरि के ही पार्श्वनाथ वसदि के एक स्तभ पर शिला लेख न० ५४ (६७) जो सन् ११२८ का है, मे उत्कीर्ण है कि--

वर्ण्य. कथन्नु महिमा भणभद्र वाहो
र्म्मोहोरु मरल मर्दन वृत्त वाहोः ।
यच्छिष्यता प्रकृतेन स चन्द्रगुप्त-
श्शुश्रूष्यते स्म सुचिर वनदेवताभि ।
वन्द्यो विभुर्भुवि न कैरिह कौण्डकुन्द.
कुन्द प्रभाप्रणयि कीर्ति विभूषिताशः ।
यश्चारुचारण कराम्बुज चचरीक-
श्चक्रे श्रुतस्य भरते प्रतिष्ठाम् ।।

इस लेख मे वताया है कि भद्रवाहु के शिष्य चन्द्रगुप्त थे उसके वाद कौण्डकुन्द हुए जिनकी कीर्ति कुन्द-प्रभा के समान थी और वे चारण मुनियो के हस्तकमलो के भ्रमर थे, आदि ।

उसी पर्वत पर कूगे ब्रह्मदेव स्तम्भ पर लेख न० ४० (६४) सन् ११६३ मे लिखा कि--

श्री भद्रस्सर्व्वतो यो हि भद्रवाहुरितिश्रुत ।
श्रुतकेवलिनाथेषु चरम परिमो मुनि· ।
चन्द्रप्रकाशोज्वलसान्द्रकीर्ति श्री चन्द्रगुप्तोऽजनि तस्य शिष्य. ।
यस्य प्रभावाद् वनदेवताभिराराधितः स्वस्य गणो मुनीनाम् ।
तस्यान्वये भूविदिते वभूव य पद्मनंदि प्रथमाभिधानः ।
श्री कौण्डकुन्दादि मुनीश्वराख्यस्सत्संयमादुद्गत चारणर्द्धिः ।

(यह ११६३ का शिलालेख ११२८ के शिलालेख का ही अनुकरण है।)

सन् १३८५ में विजयनगर में जैन मन्दिर के दीप स्तम्भ पर उत्कीर्ण हुआ कि -

श्री मूलसंघेऽजनि नंदि संघ स्तस्मिन् बलात्कारगणो अति रम्य. ।
तत्रापि सारस्वत नाम्नि गच्छे स्वच्छाशयोऽभूदिह पद्मनंदि ।

आचार्य कुण्ड (कुन्दा) रव्यो वक्रग्रीवो महामतिः,
एलाचार्यो गृध्र-पिच्छ इति तन्नाम पञ्चधा ॥

यहा आकर उनके पाच नाम मिलने लगे, किन्तु यहा उनको चारणर्द्धि नही कहा गया है। अत यद्यपि ११६३ के और १३८५ के बीच मे लोग उनको पाच नामो से जानने लगे तथापि हो सकता है विजय नगर मे उनके चारण ऋषि होने पर कोई सन्देह रहा हो। आगे चलकर यह विवाद उठा कि ग्रथराज मूलाचार के रचनाकार कुन्दकुन्द न होकर वट्टकेर है तो फिर कुन्दकुन्द को एक और नाम दे दिया गया और वट्टकेर का अर्थ प्रबर्तक, प्रधान या श्रेष्ठ लगा लिया गया।

आइए, फिर श्रवण बेलगोला के पर्वत विंध्यगिरि पर चले। वहा शिलालेख न० १०५ (२५४) सन् १३९८ मे सिद्धर वसदि मे अकित हुआ कि—

इत्याद्यनेक सूरिष्वथ सुपदमुपेतेषु दीव्यतपस्या
शास्त्राधारेषु पुण्यादजनि सजगतां कौण्डकुन्दो यतीन्द्रः।
रजोभिरस्पृष्ट तमत्व मन्तर्ब्बाह्येऽपि संव्यन्जयितुं यतीशः।
रजः पदं भूमितलं विहाय चचार मन्ये चतुरङ्गुल सः॥

उसी पर्वत पर सिद्धर बस्ती पर लेख न० १०८ (२५८) सन् १४३३ ई० मे निम्न प्रकार से उत्कीर्ण हुआ —

तदीय शिष्योऽजनि चन्द्रगुप्तः समग्र शीलनत देव वृन्दः।
विवेश यत्तीव्रतपः प्रभावप्रभूत कीर्ति भुवनान्तराणि।
तदीयवशाकरतः प्रसिद्धात् अभूतदोषा यति रत्नमाला।
बभौ यदन्तर्म्मणि वन्मुनीन्द्रस्स कुण्डकुन्दो दित चण्डदण्डः।

जान पडता है अव १५वी शती मे वे कौण्डकुन्द के स्थान पर कुण्डकुन्द लिखे जाने लगे। इसके वाद कुन्दकुन्द यह नाम ठीक कब से चला यह कहना कठिन है।

६७६ ए डी मे लिखे गए रविषेण के पद्मपुराण मे समन्तभद्र का तो जिकर है मगर कुन्दकुन्द का नही। दसवी शताब्दी के माने जाने वाले और चन्द्रगिरि पर बैठकर ग्रथ लिखने वाले नेमिचन्द्राचार्य ने भी उनका स्मरण नही किया। इसका यही अर्थ लगाया जा सकता है कि १०वी-११वी शताब्दी तक न उनकी प्रतिष्ठा जम पाई थी न

उनके नाम का संघ ही स्थापित हुआ था।

पंचास्तिकाय की टीका के प्रारम्भ में जयसेन (१३००) ने षट्प्राभृत की टीका में श्रुतसागर (१५००) ने तथा पाण्डवपुराण में शुभचन्द्र (१५५१) ने कुन्दकुन्द नाम लिखा है। ब्रह्म जिनदास (१४२३) ने जम्बू स्वामि चरित्र में कुन्दकुन्दान्वय का जिकर किया है। इससे पहले कोण्डकुन्द या कुण्डकुन्द का नाम कुन्दकुन्द नहीं मिलता। इस साक्ष्य से यह स्पष्ट है कि कुन्दकुन्द यह नाम १४-१५वीं सदी में प्रचलित हुआ।

सातवीं सदी के चन्द्रकीर्ति ने मध्यमिक कारिका की प्रसन्नपदा में आर्यदेव (250 A D) के नाम से निम्न श्लोक उद्धृत किया है :—

न अन्यया भाषया म्लेच्छो शक्यो ग्राहयितु यथा,
न लौकिकं ऋते लोका. शक्यो ग्राहयितुं तथा।

इसी बात को कुन्दकुन्द ने समयसार १/८ में इस प्रकार कहा है—

जह णवि सक्कमणज्जो अणज्जभासं बिणा दु गाहेदुं।
तह ववहारेण विणा परमत्थुवदेणमसक्कं ॥

दोनो अवतरणो में भावसाम्य व शब्दसाम्य यही सूचित करता है कि कुन्दकुन्द ६-७वी के होने चाहिए।

समयसार मे २/४६ व ५४ में सांख्य मत का खण्डन किया है इस दर्शन को सर्वप्रथम पुस्तक ६ठी शताब्दी की सांख्यकारिका है। अत कुन्दकुन्द इसके पहले के नही हो सकते। समयसार (६/१४-२५) मे "विष्णु" का सृष्टिकर्ता के रूप मे खण्डन किया है। विष्णु का यह कर्तृत्व रूप ५-६ठी शताब्दि मे विकसित हुआ था। इससे भी यही पाया जाता है कि कुन्दकुन्द ६ठी शताब्दि के आसपास होने चाहिए।

श्रवणबेलगोला के शिलालेखो मे कौण्डकुन्द का नाम तो आया मगर कोई शिलालेख प्राकृत मे क्यो नही लिखा गया? खैर, प्रथम शताब्दि के खारवेल के शिलालेख की और चौथी सदी के मथुरा से लेकर माइडावोलु (मद्रास) के लेखो की प्राकृत से समयसार आदि की प्राकृत नितान्त भिन्न है। तो फिर कुन्दकुन्द को चौथी सदी ईसवी से पूर्ववर्ती मानने मे बहुत बडी बाधा आ खडी होती है। प्रवचनसार की भूमिका मे उपाध्ये जी ने निष्कर्ष निकाला है कि उसकी भाषा वह है जिसे जेकोबी ने Pre classical प्राकृत नाम दिया है। उपाध्ये जी के अनुसार यह भाषा वह जैन शौरसेनी प्राकृत है जो दक्षिण मे फली-

फूली और उत्तर की आर्य भाषाओं के प्रभाव से अछूती रही। इस बात का आधुनिक मर्मज्ञ विद्वान् डेनेक ने खण्डन किया है और इस प्राकृत को उसने 'दिगम्बरी प्राकृत' यह नाम दिया है। यदि हम उपाध्ये जी के अनुसार इसे दक्षिणी प्राकृत मानें तो फिर हमारा ध्यान शूद्रक के मृच्छकटिकम् में दाक्षिणात्य चन्दनक द्वारा बोली गई प्राकृत की ओर जाएगा और मृच्छकटिकम् छठी शताब्दि की रचना मानी जाती है। यह नहीं हो सकता कि एक ओर तो हम यह कहें कि हमारे आचार्यों ने जन साधारण की भाषा का प्रयोग किया और दूसरी ओर उसी भाषा में रचित अन्य साहित्यांशो से तुलना करने से कतराए। इसी प्रकार यह भी मान्य नही हो सकता कि साहित्य या दर्शन शास्त्रो की भाषा जन-साधारण की भाषा से अलग होती है। जनता की भाषा का ही साहित्यकार प्रयोग करते हैं। भेद उसमे विधा का, लाक्षणिकता का व सरसता का होता है। भाषा और उसका व्याकरण तो जनता व साहित्य का समान होता है। केवल कहने की विधा व यत्र-तत्र शब्दो का प्रयोग ही भिन्न होता है। (सरयूप्रसाद अग्रवाल ने प्राकृत विमर्श पृ. १८-२१ मे बताया है कि पिशेल व लेसेन ने मृच्छकटिकम् और शाकुन्तलम् में कुछ पात्रो द्वारा प्रयुक्त भाषा को दक्षिणात्य संज्ञा दी है। ऐसी सूरत में कुन्दकुन्द की भाषा के काल निर्णय के लिए उसकी तुलना कालिदास व शूद्रक द्वारा प्रयुक्त प्राकृत से तुलना करनी होगी और तब कहना होगा कि समयसार आदि की रचना छठी शताब्दि के आस-पास की होगी।)

'प्राकृत पैंगलम् की भूमिका पृष्ठ ४१३-४१७ में डा० भोलाशंकर व्यास ने बताया है कि प्राकृत का मात्रिक छन्द गाथा भरत के नाट्यशास्त्र के समय तक मान्य न होने पाया था। इस छन्द की जन्मभूमि भी महाराष्ट्र या आंध्र की है और कालिदास के समय में यह अत्यधिक प्रचलन पा चुका था। इसी छन्द का प्रयोग समयसार आदि में हुआ है। इसका अर्थ यह होगा कि ये कृतियां भी गुप्तकालीन ही हो सकती हैं।

कुन्दकुन्द की रचनाओं में सर्वश्रेष्ठ समयसार, पंचास्तिकाय और प्रवचनसार माने गए हैं, और किसी में भी उन्होंने अपना इतिवृत्त प्रकट नहीं किया, किन्तु कुन्दकुन्द एक प्रामाणिक आगम ग्रन्थ रचनाकार हैं और सर्वकालीन हैं, इस बात को स्थापित करने के लिए दो

घटनाए बताई गई—पहली यह कि पूर्वभव मे उनने आगम को किसी गुहा मे देखा और पुनर्जन्म लेकर उसे खोज निकाला (अर्थात् धर्मस्य तत्त्व निहित गुहायाम् को चरितार्थ किया) तथा उन्होने मौलिक कुछ नही लिखा परन्तु लुप्तप्राय आगम को ही उजागर किया। दूसरी यह कि वे स्वय विदेह क्षेत्र के तीर्थंकर सीमधर स्वामी से बोध प्राप्त करके आए थे। साथ मे मत्र शास्त्र भी लाए थे जो समुद्र मे गिर गया। भला स्वय तीर्थकर के मुख से सुनी हुई वाणी का स्थान क्या वही नही होगा जो महावीर की दिव्यध्वनि सुनकर गौतम गणेश ने विस्तृत की ? ये दोनो बाते काल्पनिक है क्योकि सन् १९१८ मे बम्बई से प्रकाशित श्लोकवार्तिक की प्रस्तावना मे मनोहर लाल ने उमास्वाति का भी विदेह गमन जाना बताया है। यही नही उन्हे चारर्णद्धि और उनका नाम पद्मनन्दि भी लिखा है।

इस विषय मे विदेह क्षेत्र व सीमधर नाम बडे ही द्योतक हैं। कुल मिलाकर इसका अर्थ होता है कि कुन्दकुन्द ने भारत की सीमा के पार विदेश के प्रतिष्ठित ज्ञानियो से विचार विमर्श करके अपने शास्त्र लिखे थे। यूनान मे सातवी सदी ईसा पूर्व मे अनक्सिमदर (Anaximander) नाम का दार्शनिक हुआ है। सीमधर के समवशरण से तात्पर्य अनक्सिमदर का देश हो और कुन्दकुन्द ने यूनान के तत्कालीन किसी दार्शनिक से विचार-सवाद किया हो—ऐसा कहना असम्भव नही कहा जा सकता, परन्तु कठिनाई यह आई कि जैन मुनि समुद्र पार अथवा इतनी लम्बी यात्रा कैसे कर सकते थे, तो यह कहा जाने लगा कि वे पृथ्वी तल से चार अगुल हो नही चलते थे परन्तु आकाश मार्ग से शीघ्रता से सीमा के आर-पार गए आए थे। दर्शनसार के रचयिता देवसेन (१०वी सदी) ने पद्मनन्दि का विदेह-गमन तो लिखा है परन्तु आकाश मार्ग से जाना नही लिखा न कुन्दकुन्द नाम ही लिखा।

कहा जाता है कि वायु मार्ग मे तीव्र गति के कारण न उनकी ग्रीवा ही टेढी हो गई किन्तु उनका मयूरपिच्छ भी गिर गया और उनने एक उडता हुआ गृद्धपिच्छ धारण कर लिया इसलिए वे वक्रग्रीव व गृद्धपिच्छाचार्य कहलाए जाने लगे। ये दोनो नाम १४वी शताब्दि के लगते है। अलग से गवेषणा का विषय यह भी है कि मयूरपिच्छी रखने की व्यवस्था सबसे पहले कब हुई और यदि यह

प्राचीन व्यवस्था है तो उमास्वाति को गृद्धपिच्छाचार्य फिर कैसे कहा गया और कुछ मुनि बलाक पिच्छ क्यो कहलाए ? अब देखिए, कुन्दकुन्द आकाश मार्ग मे अपनी पिच्छी ही न खो बैठे, मत्र शास्त्र भी खो दिया। कल्पना करने वाले का ध्यान इस ओर न गया कि यह उनकी असावधानी का सूचक है। एलाचार्य यह नाम तो उनको सीमधर के समवशरण मे उपस्थित चक्रवर्ती ने उपहास मे दिया था। किसी का कहना है कि निरतर पढते रहने के कारण उनकी ग्रीवा वक्र हो गई थी यहा तक कि जो वक्रगच्छ है उसका भी यही आधार बताया जाता है।

इन सारी बातो से एक नतीजा और निकलता है वह यह कि कुन्दकुन्द का असली नाम पद्मनन्दी और अपर नाम कौण्डकुन्द था। चूंकि कौण्ड कौण्ड या सम ध्वनि के नाम को कोई अर्थ देना सम्भव नही है इसलिए यह नाम दक्षिण के किसी स्थान विशेष का होना चाहिए, किन्तु यह नाम उनके जन्म-स्थान का भी नाम था इस बात का आधार कल्पना ही जान पडती है। स्थान के नाम पर अन्वय के नाम कई मिलते हैं जैसे मथुरान्वय, अरुङ्गलान्वय, श्रीपुरान्वय, किन्तुरान्वय परन्तु तुम्बुलुराचार्य को छोडकर शायद और कोई आचार्य नही हैं जिनका नाम उनके जन्म स्थान को लेकर रखा गया हो।

[कहा जाता है कि उमास्वाति आचार्य कुन्दकुन्द के पश्चाद्वर्ती हैं, परन्तु हारवर्ड युनीवर्सिटी द्वारा प्रकाशित दी योगा सिस्टम आफ् पातजलि की भूमिका मे बताया है कि महाभाष्यकार पातजलि और योगसूत्र के रचयिता पातजलि अलग-अलग व्यक्ति है। पातजलि के योगसूत्र के सूत्र उमास्वाति के तत्त्वार्थाधिगमसूत्र में मिलते हैं और उमास्वाति ५०० ए डी के माने जाते हैं। उमास्वाति के पूर्ववर्ती कहे जाने वाले कुन्दकुन्द इस तरह लगभग चौथी या पाचवी सदी के ठहरते हैं।] [१३-१४वी शताब्दी मे मूलसघ सरस्वतीगच्छ सागत्यपट्ट के भट्टारक राजेन्द्रमौलि ने अपनी अर्हत्सूत्रवृत्ति टीका मे तत्त्वार्थसूत्र को कुन्दकुन्द की ही कृति होना बताया हे। (देखिए अनेकान्त वर्ष १ वीर सवत् २४५६)। लगभग इसी समय के श्वेताम्बराचार्य रत्नसिंह ने इस बात का खण्डन किया था कि तत्त्वार्थाधिगम सूत्र आचार्य कुन्दकुन्द द्वारा रचित हैं। परन्तु अब यह बात विद्वान मानने लगे है कि तत्त्वार्थसूत्र के रचनाकार उमास्वाति

नही हैं। कुछ प्रसग ऐसे भी हैं जिनसे दोनो का समकालीन होना पाया जाता है यथा—

वर्षे सप्तशते चैव सप्तत्या च विस्मृतौ,
उमास्वामिमुनिर्जातः कुन्दकुन्दस्तथैव च।

[वर्तमान जैन मान्यता के अनुसार तत्त्वार्थसूत्र के रचनाकार गृद्धपिच्छाचार्य उमास्वाति हैं और उनने गृद्धपिच्छाचार्य कुन्दकुन्द के ग्रन्थो से काफी कुछ लिया है। यह बात इस प्रकार भी प्रमाणित होती है कि समय प्राभृत में तत्त्वो का क्रम आश्रव, सवर, निर्जरा, बध और मोक्ष रखा है उसे उमास्वाति ने तर्कसम्मत करने के लिए आश्रव, बध, सवर, निर्जरा और मोक्ष यह क्रम दिया है। [यद्यपि प्राप्त आलेख सन् ८६० से पहले नही मिलता फिर भी शिला व ताम्र लेखो का विवेचन करके डा० गुलाब चन्द चौधरी ने जैन शिलालेख समूह (तृतीय भाग) की प्रस्तावना पृ० ५१ में निष्कर्ष निकाला है कि कौण्डकुन्दान्वय का प्रचलन ई० ७वीं के उत्तरार्ध से प्रारम्भ हुआ था। ऐसी सूरत मे कुन्दकुन्द (कौण्डकुन्द) का समय ६ठी शताब्दी ई० से पहले नही जा सकता हालाकि श्रवण बेलगोल के लेख न० १०५ (२८५) से तो पाया जाता है कि सन् १४३३ तक तो चन्द्रगुप्त का अन्वय ही प्रतिष्ठित था।]

जिस बात पर जोर है वह है जाना माना मगलाचरण जो शास्त्र वाचन से पहले और कई मगल कार्यो से पूर्व पढा जाता है। वह है—

मंगलम् भगवान वीरो मंगलं गौतमो गणी।
मंगल कुंदकुदाद्यो जैन धर्मोऽस्तुमंगलम्॥

कुछ विद्वान कुन्दकुन्दार्यो पाठ स्वीकार करते है। यह पाठ-भेद क्यो? इसके अलावा एक प्रश्न यह भी है कि यह मगलाचरण कब किसके द्वारा प्रारम्भ हुआ। मुझे लगता है कि यह ७वी शताब्दी के बहुत बाद मे रचा गया जब कुन्दकुन्दान्वय मूल सघ के रूप मे अच्छी तरह प्रतिष्ठित हो गया था। यही कारण है कि शिलालेखो मे जो मगलवचन प्राय मिलता है वह अन्य है। किसी भी शिला लेख मे यह मगलाचरण नही मिलता। पुराने शिलालेखो मे जो मगलवचन है वह अकलकदेव (सातवी-आठवी शताब्दि) द्वारा रचित इस प्रकार है—

"श्रीमत्परम गंभीर स्याद्वाद मोघ लांछनम्।
जीयात् त्रैलोकनाथस्य शासनं जिनशासनम्॥

इसके अलावा यह मगलवचन गौतम गणधर और कुन्दकुन्द के बीच के षट्खडागम और कषायप्राभृत के आचार्यों की अवमानना करता है। प्राथमिकता उनकी स्मृति को दी जानी चाहिए थी। किसी विद्वान् के अनुसार यह सवा सौ. वर्ष पहले की प० पन्नालाल सघी दूनी वालो की रचना है।

इद्रनन्दि (ई० सदी १०-११) ने श्रुतावतार (१६०) मे बताया है कि कुन्दकुन्द को जन्मभूमि कोण्डकुन्द पुर था इसलिए उनका नाम कोण्डकुन्द ही पड गया। पुण्याश्रव कथाकोष (१८१७) की किसी प्रति के आधार पर पर यह भी कहा जाता है कि पिदथ नाडु जिले मे कुरुमरई मे उनका जन्म हुआ था। ज्ञान प्रबोध (१९०६) के अनुसार उनका जन्म मालवा के बारापुर शहर मे हुआ था। मुझे लगता है कि इस बात का आधार उनका नाम पद्मनदि होना है। जबूदीव पण्णत्ति की रचना पद्मनदि द्वारा बारा नामक नगर जिला कोटा राजस्थान मे की गई थी। ज्ञानप्रबोध के लेखक ने शायद दोनो ही पद्मनन्दि एक समझ लिए थे। १९६४ से यह भी कहा जाने लगा है कि गुण्टकल रेलवे स्टेशन के पास अन्तपुर जिले के गुटी तारलुके मे कोन्दकुन्दी (कोडकुडी) अथवा कोनकोण्डल नाम का गाँव है जिसके पास एक पर्वत पर जैन मूर्तिया हैं और इस गाँव का सम्बन्ध आचार्य कुदकुद से व पद्मनदि भट्टारक को जन्मभूमि से बताया जाता है। इस ग्राम का प्राचीन नाम कौण्डकुन्दे था जो वहाँ के क्वचिद् शिलालेखो मे आज मिलता भी है ऐसा कहा जाता है। वदनगुप्पे के ताम्रलेख से प्रकट होता है कि सन् ८०८ मे **कौण्डकुन्देयान्वय** के नाम का मुनिसघ था जो कौन्डकुन्दे नाम के स्थान का सूचक है। जान पडता है कि इसी अन्वय मे के पद्मनदि प्रतिभा के कारण स्वय कौण्डकुन्द कहे जाने लगे और कालान्तर मे परम्परा का नाम ही कुन्डकुन्दान्वय पड गया।

यदि हम यह मान लें कि तिरुकुरल के कर्ता वल्लुवर ही आ० कुन्दकुन्द हैं तो फिर वे तामिल नाडु के होने चाहिए। उनकी तपस्या और समाधि का क्षेत्र भी तामिल नाडु मे ही रहा है। अत उनके जन्मस्थान को तामिलनाडु के बाहर ढूंढना व्यर्थ है। वल्लुवर हरिजन होते हैं। हरिजनो के लिए मुनि दीक्षा का वर्जन है फिर वल्लुवर की अभिन्नता कुन्दकुन्द से कैसे सम्भव है ? यदि वल्लुवर और कुन्दकुन्द

एक नही हैं तो कुन्दकुन्द को ईसवी पूर्व पहली शताब्दि का बता पाना कठिन है।

वे स्वय ६-७वी सदी के, उनके नाम की मुनि वश परम्परा ६वी सदी से व उनका संस्कृत नाम कुन्दकुन्द १४वी शताब्दि से पहले होना प्रमाणित नही हो पा रहा। उक्त विचार विद्वानो द्वारा स्थिति स्पष्ट करने के उद्देश्य से लेखवद्ध किए गए है, लेखक का अपना कोई आग्रह नही है।

तीर्थंकरो की वाणी दिव्यध्वनि के रूप मे हुआ करती थी। महावीर की देशना अर्धमागधी मे हुई थी और चूकि ऐसी थी कि सब सभासद् समझ लेते थे तो अवश्य ही बडी सरल रही होगी परन्तु जब उसको लेखबद्ध किया गया तो प्रारम्भ से ही वह इतनी पारिभापिक व दुरूह हो गई कि प्राकृत भापा मे लिखे गए ग्रथो की सस्कृत मे और भो कठिन टीकाएँ वनाई गई जिसके कारण जनवाणी जनता से दूर हो गई। इसी कारण जैन धर्म मे सरल मार्ग भक्ति-मार्ग का प्रचलन हुआ और वह ही जैनधर्म का मुख्य व दर्शनीय रूप बन गया। यही कारण है कि कुन्दकुन्द ने भी भक्तिमार्ग का और स्तुतियो का समर्थन किया है।

भारत पर विदेशी आक्रमण और विदेशो का भारतीय सभ्यता के विकास में योगदान के वारे मे जैन वाङ्मय ने चुप्पी साधी हुई है और विदेशी ऋण को स्वीकार नही किया है। आश्चर्य यह है कि लेखको ने अपने समय और कृतत्व के वारे मे क्योकर ऐसा भ्रम रहने दिया कि आज ग्रथिया सुलझाए नही सुलझती। एक ही नाम के कई ग्रथ और कई आचार्यों का एक ही नाम होने के कारण सही वात की खोज करना और भी कठिन कार्य है। यहा तक कि समयसार भी दो वताए जाते हैं। इसके पीछे अहं का अभाव था या यह कि अपना परिचय देने की प्रथा ही नही थी या यह कि ग्रथो का समय व रचयिताओ ने अपने नाम इसलिए नही दिए कि उनके वारे मे अति प्राचीनता का दावा किया जा सके या यह कि हम प्राचीनता मे श्रेष्ठता देखते हैं जवकि हमारे मनीपी विचारो की ज्येष्ठता को नही, श्रेष्ठता को महत्व देते रहे चाहे विचार अर्वाचीन हो अथवा प्राचीन। अनिम सभावना ही उचित जान पडती है। कालिदास ने ठीक ही तो कहा—

पुराणमित्येव न साधु सर्वं, न चापि नूनं नवमित्यवद्यम्।
सन्त परीक्षान्यतरद् भजन्ते, मूढ परप्रत्ययनेय बुद्धिः॥